

## उत्तर-पूर्व भारत का भक्ति आन्दोलन

वैभव सिंह

हिंदू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

### शोध-सारांश:

मध्य काल को कुछ विवादों के साथ लगभग सभी विद्वान भारतीय पुनर्जागरण का स्वर्ण युग मानते हैं, और यह है भी। पहली बार भक्ति काल में ही कवियों और समाज सुधारकों के माध्यम से लोक चेतना का विकास हुआ। लोगों के मानस ने तर्कपूर्ण सोचना शुरू किया। परन्तु अगर हम मध्यकालीन सन्त कवियों को ध्यान से पढ़ें तो लगभग सभी कहीं न कहीं किसी न किसी बिंदु पर संकीर्ण दीखते हैं। इसे वक्रत का तकाजा कह सकते हैं। वह एक ऐसा समय था जब जनता एक प्रजारंजक राजा को ही लोकतंत्र मानती थी। प्रगतिशीलता का पुरोधा बनने वाला यूरोप गैलिलियो गालीलेई को सालों तक इसलिए कारागार में रखता है क्योंकि उसने पृथ्वी को सूर्य के चारों ओर घूमता हुआ बताया था। यह संक्रमण का काल था। लोग बदल रहे थे लेकिन धक्कों के साथ, हिचकोले लेते हुए क्योंकि रुढ़ियों का घर्षण तीव्र था। महाप्रगतिशील होने का दावा भरने वाले कबीर के पास भी आधी आबादी की चिन्ता धुंधली है। उनका मानना है कि नारियों के बीस फन हैं और उनको देखने भर से ही विष चढ़ सकता है। अन्य संत कवियों में भी अपने आराध्य और अपने पंथ के प्रति चरम निष्ठा तथा अन्य के प्रति विद्वेष का भाव था। मानव जीवन में व्याप्त संभावनाओं को अपने जीवन तथा लेखन के माध्यम से चरितार्थ करने वाले बाबा तुलसी भी जीवन के आरंभिक दिनों में वर्णगत संकुचन से ग्रस्त थे। इन अर्थों में उत्तर-पूर्व भारत में भक्ति और समाज सुधार आन्दोलन की अलख जगाने वाले श्रीमन्त शंकरदेव बिलग हैं। उनके पारिजात हरण नाटक में नायिका सत्यभामा, एक आधुनिक नारी की तरह आती है। उनके नाम घरों में सबके लिए स्थान है। वह ब्रजयात्रा पर कृष्णभक्तों से मिलते हैं, ब्रजभाषा सीखते हैं, कृष्णभक्त बनते हैं, असमिया और बंगाली भाषा से ब्रजभाषा का मेल करके एक लोक संपृक्त भाषा ब्रजबुलि का निर्माण करते हैं, लेकिन वह राम का आदर्श देखते हुए उत्तरकाण्ड भी लिखते हैं, जिसमें राम के एक लोकरंजक रूप को दिखाया गया है। वह राम में व्याप्त हर उस मूल्य को उजागर करते हैं जिससे समाज को समरस बनने में सहायता मिले। श्रीमन्त के रचना संसार और कार्य व्यापार को देखते हुए यह कह सकते हैं कि जो काम हिन्दी क्षेत्र में बाबा तुलसी, सुर, कबीर, रामानन्द, दादू, रैदास, आचार्य बल्लभ, परमानन्द दास और सुन्दरदास ने किया, वह कार्य उत्तर पूर्व भारत में श्रीमन्त शंकरदेव ने अकेले ही अपनी वैचारिकी और नीयत से कर दिखाया। उनके इस कार्य में उनके शिष्यों और प्रचारकों का भी योगदान महत्वपूर्ण है। यहाँ पर सुन्दरदास, सूरदास और परमानन्ददास का नाम इसलिए भी लिया गया है क्योंकि श्रीमन्त की रचनाओं में आवश्यक काव्यशास्त्रीय खुराक भी है और अपेक्षित राग-रागिनियाँ भी हैं। उन्होंने छावी, दुलरी, झुमरी, झूमा, पयार, भटिमा जैसे छंदों का निर्माण किया। अपने सत्रों और नामघरों में मंचन के लिए खोल और बाही जैसे वाद्य यंत्रों का निर्माण किया। माजुली नदी द्वीप पर सामान्य जनमानस के आसान जन जीवन के लिए नाव बनाने की कुछ सरल विधियों को भी विकसित किया। श्रीमन्त इसलिए भी महत्वपूर्ण हैं कि उनके कर्तृत्व और कृतित्व में आधुनिक लोकतंत्र की एक आशापूर्ण झलकी पांच सौ साल पहले ही विद्यमान थी।

### बीज शब्द:

उत्तर-पूर्व भारत, श्रीमन्त शंकरदेव, भक्ति आन्दोलन, नव-वैष्णववाद, ब्रजबुली, माजुली नदी-द्वीप, लोकतन्त्र।

नया होना ही नए होने की एकमात्र शर्त नहीं है, नया वह भी है जो कभी पुराना नहीं होता। मुझे याद आता है, हमारी माध्यमिक शिक्षा की हिन्दी 'मञ्जरी' में एक पाठ आता था 'कौन बनेगा निंगथउ (राजा) ?' कहानी मणिपुर की एक लोक कथा पर आधारित है। कंगलाइपक का राजा अपने उत्तराधिकारी की तलाश में अपने ही संतानों में एक प्रतियोगिता रखता है, जिसमें राजा के तीनों पुत्र सानाजाउबा, सानायायमा और सानातोम्बा अपने अपूर्व बल का प्रदर्शन करते हैं। सानातोम्बा तो अपने पराक्रम से बरगद के पुराने वृक्ष को ही उखाड़ फेकता है। इन सब घटनाओं के बीच, राजकुमारी सानातोम्बी बरगद के वृक्ष के पास खड़ी होकर विलाप कर रही थी।

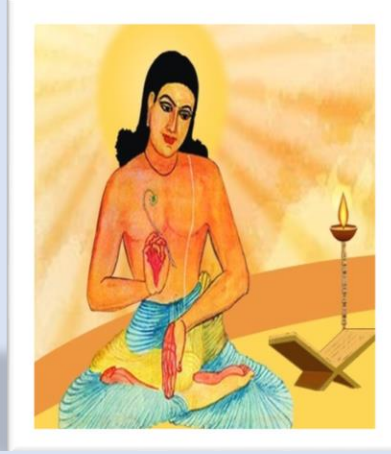
उसे इस कृत्य में वीरता कम, क्रूरता अधिक दिख रही थी। वह पक्षियों के घोंसले उजड़ जाने से दुःखी थी। वह वटवृक्ष के मर जाने से अत्यन्त व्याकुल थी। अन्त में राजा, उसकी प्राणिमात्र के लिए संवेदना देख कर उसी को तुंगी (उत्तराधिकारी) चुनते हैं। पराक्रम पर मानवीय संवेदना और प्रकृति प्रेम की जीत होती है। उत्तर-पूर्व भारत की, प्रकृति और प्राणिमात्र के प्रति यह संवेदना जगद्विख्यात है, जो समय समय पर किस्सों कहानियों के माध्यम से हमें सुनाई पड़ती रहती है। यह कहानी इतिहास के प्राचीर पर तो कहीं मध्य में अंकित है लेकिन इसका सन्देश नित-नवीन है। इसका अनुभव मुझे तब होता है जब मैं दिल्ली में अपने उत्तर-पूर्व भारत के किसी मित्र से मिलने जाता हूँ। उसके घर की बॉलकनी, हमारे घरों की बॉलकनी से अलग, आधारभूत अन्तर लिए होती है। वहां पक्षियों के लिए भी जगह है, तितलियों के लिए भी, लताओं के लिए भी और गमले में जीविका कर सकने वाले छोटे

पौधों के लिए भी। यह है हमारा भारत। यही है हमारा भारत, जिसकी नींव डालने में कुछ गणमान्यों ने अपनी जान खपा दी, अपना सब 'अमूल्य' दे दिया, मूल्य निर्धारण के लिए। यहाँ के लोकतंत्र का लोक मनुष्यों से आगे बढ़कर पशु-पक्षी, लता-वृक्ष, पहाड़-नदियों तक विस्तृत है। सबने अपनी-अपनी रीतियों, क्रियाविधियों से अपना कार्य किया। श्रीमन्त शंकरदेव ने अपनी रीति से, लाचित बरफुकन ने अपनी रीति से, और भूपेन हज़ारिका ने अपनी रीति से।

अहोम सेना में सेनापति रहे लाचित बरफुकन और ब्रिटिश साम्राज्यवाद से नागाओं की रक्षा के लिए क्रान्ति का बिगुल फूंकने वाली रानी गाइदिन्लीउ का स्पष्ट मानना था कि कभी-कभी अहिंसा की चिर स्थापना के लिए शस्त्र उठाना भी अनिवार्य हो जाता है। यही जागरण, भारत रत्न भूपेन हज़ारिका ने अपनी संगीत के माध्यम से किया। रीतियां सबकी अलग रही, लेकिन लड़ाई एक ही मूल्य की स्थापना को लेकर रही है, और वह मूल्य हैं अहिंसा की स्थापना का, प्रकृति-प्रेम का, जीवन में जीवंतता और हरियाली का। हमने सबका अच्छा और शिव ग्रहण किया, बिना किसी भेदभाव के। ऋग्वेद का ऋषि घोषणा करता है 'आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरितासउद्भिदः।'<sup>1</sup>

अर्थात् 'कल्याणकारक, न दबनेवाले, पराभूत न होने वाले, उच्चता को पहुँचानेवाले शुभकर्म चारों ओर से हमारे पास आयें।'

15वीं शती में जन्मे श्रीमन्त शंकरदेव को जब अपने अस्तित्व में कसमसाहट महसूस हुई तो वह सम्पूर्ण भारत की यात्रा पर निकले, और दो बार उन्होंने सम्पूर्ण भारत की यात्रा की। वह केदारनाथ से रामेश्वरम और जगन्नाथपुरी से द्वारिका तक गए। इस यात्रा से वो जो लेकर लौटे वह है 'विविधता में एकता' 'महान सांस्कृतिक परम्पराओं में इंकृत मौलिक एकात्मवाद'। कालान्तर में इसी पूँजी से उन्होंने समस्त उत्तर-पूर्व भारत को, प्रकारान्तर में समस्त भारत को अध्यात्म,



मानवता और सांस्कृतिक समृद्धि के उत्स पर लाकर खड़ा कर दिया। उनकी इस आध्यात्मिक इंज्ञावती के समक्ष भारत के सारे भौतिक उच्चावच ध्वस्त हो गए। यह उनके तमाम साहित्यों, सत्रों एवं नामघरों में अभी भी पुंजीभूत है।

श्रीमन्त को भारत वर्ष से गहरा लगाव है। एक स्थान पर वह लिखते हैं 'कोटि-कोटि जन्म अंतरे जाहार, आसे महा पुन्यराशि, सिसि कदाचित मनुष्य होवय, भारतवरिषे आसि।'<sup>2</sup> यह वास्तव में ऋषियों के उसी उद्घोष का छायानुवाद है जो सदियों पहले गाया गया था। 'गायन्ति देवाः किल गीतिकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे। स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूत भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।'<sup>3</sup>

यह वही प्राचीन सत्य है जो नित-नवीन है। जिसे ऋषियों और मनीषियों ने समय-समय पर अपनी वाणी में कहा। प्राणिमात्र के प्रति भारतीय मूल की वही दया और करुणा और मानवता श्रीमन्त को जीवन भर उद्वेलित करती रही और उस शुभ उद्वेलन का परिणाम है 'एकशरणम नामधर्म'। श्रीमन्त ने आदिवासी जनजातियों यथा गारो, आदी, भोटा, मिरी, यवना, कछारी आदि को समाज की मुख्य धारा में लाने के लिए काम किया। समाज के हर व्यापार में उनकी भागीदारी को सुनिश्चित किया। इनके अन्तर तथा बाह्य को जागृत कर नव-वैष्णववाद द्वारा समतामूलक समाज के मार्ग को प्रशस्त किया। उनके शिष्यों में योग्यता के आधार पर सभी को स्थान था।

चाँद खान (मुस्लिम), मुरारी-चिलारी (कोंच), नरहरि (अहोम), परमानन्द (मिशिंग), जयराम (भूटिया), रमाई (बोडो), श्रीगोविन्द (गारो), दामोदर (ब्राह्मण), माधवदेव (कायस्थ) आदि सभी उनके प्रमुख शिष्यों में थे। माधव देव नामघोषा में एक स्थान पर लिखते हैं 'श्रीमंत शंकर हरि

भक्तर जाना येन कल्पतरू। ताहांत विनाउ नाइ नाइ नाइ  
आमार परम गुरू।<sup>4</sup> जिस समय श्रीमन्त शंकर देव का जन्म  
हुआ था वह समय उत्तर और पूर्व भारत में शाक्तों का था।  
शाक्त, अनियंत्रित होकर बाह्याचार और वामाचार का अभ्यास  
किया करते थे। उनको, उस समय के अहोम, कोंच और  
कछारी राजाओं का संरक्षण प्राप्त था और वो अपनी इच्छा अनुसार,  
शक्ति की आराधना के आड़ में एक बड़ी संख्या में नरबलि और पशुबलि  
दिया करते थे। वामाचार, वीभत्सता और व्यभिचार तक पहुंच गया था।  
सिद्ध-नाथ संप्रदाय के

**किसी भी सभ्य समाज को ऐसे  
ही व्यक्तित्व पसंद आते हैं जो हर  
प्रकार से लोक रंजक तथा  
प्रजारंजक हों।**

एक वामाचारी ने तो यहाँ तक लिख दिया था कि 'मातरियोनि  
परित्यज्य मैथुन सर्वयोनिषु'। यह एक वाक्य उस समय के  
उत्तर-पूर्व भारत की मूल्यगत अनियंत्रणता को बता सकता है।  
श्रीमन्त शंकर ने अहोम और कोंच राजाओं को प्रभावित कर,  
उत्तर-पूर्व भारत को शाक्तों के इस अन्धविश्वास से मुक्त  
कराया और वैष्णवों की अहिंसा और दया का प्रचार किया।  
किसी भी समाज में नवीन भक्ति मार्ग का प्रचार करना सहज  
नहीं है। कामरूप की तात्कालिक राजनीतिक अस्थिर  
परिस्थितियों ने शैव और शाक्त एवं तांत्रिक पूजा उपसनाओं  
ने शंकरदेव के द्वारा प्रतिपादित नव-वैष्णव धर्म के प्रचार-  
प्रसार में बाधाएँ उत्पन्न की। उन्हें अनेक तरह का कष्ट उठाना  
पड़ा। उन्हें अपनी मातृ-भूमि को छोड़कर उड़ीसा में शरण  
लेनी पड़ी थी। अंत में कोचराज के आश्रय में उनके द्वारा  
प्रतिपादित वैष्णव भक्ति को मान्यता मिली। छोटे-छोटे  
समुदायों और कबीलों में बँटे लोगों को 'एकशरणम नामधर्म'  
के द्वारा जोड़ा और उनको नाम स्मरण की महिमा बताई।  
आत्मा और परमात्मा के बीच में विचौलिए की भूमिका को  
निस्तेज किया। बाह्याचारों से मुक्ति दिलाकर भारतीय दर्शन  
और अध्यात्म का लोकभाषा (ब्रजबुलि) में प्रचार किया।  
शंकरदेव ने भक्ति मार्ग के प्रचार के लिए लोक भाषा में ही  
साहित्य का सृजन किया।

#### काव्य:

हरिश्चंद्र उपाख्यान, रूक्मिणी हरण काव्य, बलि छलन,  
अमृत मंथन, अजामिल उपाख्यान।

#### भक्तितत्व प्रधान:

भक्ति प्रदीप, भक्ति रत्नाकर, निमि नवसिद्ध संवाद,  
अनादिपतन।

#### अंकिया नाटक:

पत्नी प्रसाद, कालिया दमन, केलि गोपाल, रूक्मिणी हरण,  
पारिजात हरण, रामविजय।

#### गीत:

बरगीत, भटिमा, टोटय, चपय।

#### अनुवाद:

भागवत, उत्तरकांड रामायण।

#### नाम-कीर्तन:

कीर्तन, गुणमाला।

शंकरदेव के समय काल में तो निर्गुण भक्ति धारा  
का ही महत्व था। शंकरदेव स्वयं भी कबीर से काफ़ी प्रभावित थे। परन्तु  
उनका मानना था कि निर्गुण ब्रह्मा की उपलब्धि सबके लिए आसान नहीं है।  
इडा, पिंगला और सुषुम्ना का संधान सहज नहीं है। इसीलिए शंकरदेव  
अपने अनुयायियों को पहले सगुण मार्ग में चलकर बाद में निर्गुण ब्रह्मा को प्राप्त  
करने के लिए कहते हैं। उनका मानना था कि भक्ति मार्ग, इतना सरल मार्ग है

कि उस पर चलकर साधारण मानव भी मुक्ति प्राप्त कर  
सकता है। 'ज्ञान कर्म भक्ति कहिलों करि भेद। भक्ति परम  
पंथ दिलों परिच्छेद।'<sup>5</sup> वे एकमात्र कृष्ण देव को 'कृष्णास्तु  
भगवान स्वयं' की ही उपासना की। वे संपूर्ण रूप से भगवान  
कृष्ण के शरण में आ गए थे। उनकी भक्ति में भी हम कृष्ण  
के प्रति वात्सल्य एवं सख्य भाव देख सकते हैं। 'सर्वधर्मान  
परित्यज्य मामेक शरणम ब्रज अहम् त्वां  
सर्वपापेभ्योमोक्षीश्यामि मा शुचः।'<sup>6</sup>

श्रीमन्त शंकरदेव ने नाम धर्म को मानवधर्म का पर्याय  
बनाने के लिए प्राण खपा दिए। शंकरदेव ने सत्र और नामघर  
की स्थापना की। यहां मंदिर और मूर्ति के बजाय कीर्तन और  
भागवत ग्रंथ को रखने की व्यवस्था होती थी। भगवान के गुण  
नामों की प्रधानता के कारण कीर्तन के लिए 'नाम' शब्द का  
भी प्रचलन हो जाने के कारण कीर्तन घर का पर्यायवाची शब्द  
'नामघर' बन गया। नामघर में कीर्तन के अतिरिक्त भगवान  
की लीला का अभिनय, भागवत-आदि ग्रंथों का पाठ,  
अध्ययन-अध्यापन, सामाजिक-सांगठनिक विचार-विमर्श  
तथा पर्व-उत्सव आदि होते थे। इस तरह कीर्तन घर में ही  
देवालय, शिक्षालय, पुस्तकालय, रंगमंच और समाज के लिए  
सांगठनिक कार्य एवं घर में ही देवालय का काम भी चलता  
था। सत्र के गुरू ही इन सभी कामों का कार्य मुखिया बनकर  
करते थे। इस तरह सत्र और नामघरों में न सिर्फ ज्ञान, योग  
और भक्ति का प्रचार होता था बल्कि सामाजिक समरसता  
का भी व्यापार होता है। शंकरदेव की विशेषता यह है कि जो  
बात वह कहना चाहते थे उसे कला के माध्यम में कहते थे।

उन्होंने साहित्य, संगीत, नाटक, नृत्य, वाद्य-यंत्र, चित्र-  
कला आदि के द्वारा भक्ति का प्रचार किया। श्रीमन्त की  
भक्ति, भक्त कवियों की भक्ति की तरह भावनात्मक प्रेमोत्पाद  
और गलदश्रु नहीं थी। वह अपने आराध्य के सामने कभी खुद  
के कल्याण और मोक्ष के लिए नहीं गिड़गिड़ाए। उनकी भक्ति

बाह्याचारों में आकंठ डूबे तत्कालीन समाज के सामाजिक उन्नयन और संगठन की सूत्रधार थी। यह शरण्या भक्ति, वैष्णवों के मानवतावाद और अहिंसावाद से ही अपने प्राण खींचती है। डॉ. बिमल फूकन अपनी पुस्तक 'शंकरदेव: वैष्णव सेंट ऑव असम (2011) में लिखते हैं-

"Social Reforms was Shamkardeva's main agenda. His religion, a means of his people to climb out of the abyss they found themselves in. He knew the faith needed, to be liberal, practical, universal and accessible. Above all, it had to appeal the audience it was aimed at. Mere issuing of doctrinal message was not enough. One had to create the ways and means to carry it to people. For it, to be successful, it need to be administered with kindness, aberrations dealt with firmly."<sup>7</sup>

अर्थात् 'सामाजिक सुधार, शंकरदेव की मुख्य कार्यावली थी। उनका धर्म, उनके लोगों को, उनके अन्तर्मन और समाज में व्याप्त गहरे गड्ढे से बाहर निकलने का एक साधन था। उन्हें विश्वास था कि श्रद्धा को उदार, व्यावहारिक, सार्वभौमिक और सुलभ होना चाहिए। केवल सैद्धांतिक संदेश जारी करना पर्याप्त नहीं था। इसको लोगों तक ले जाने के लिए तरीके और साधन की आवश्यकता थी। सफल होने के लिए, इसे दयालुता के साथ प्रशासित करने की आवश्यकता थी।' श्रीमन्त की इन्हीं आधारभूत भूमिकाओं और संस्थाओं को महात्मा गाँधी अपनी राजनैतिक परिधि में लेकर आए। अस्पृश्यता उन्मूलन और असहयोग आन्दोलन सम्बन्धी अपनी यात्राओं में वह जब उत्तर पूर्व भारत गए तो उन्होंने नामघरों को देखा। उन पर टिप्पणी करते हुए श्री गाँधी अपनी एक पत्रिका में लिखते हैं "असम भाग्यशाली है कि शंकरदेव ने पाँच सौ साल पहले इसके लोगों को ऐसा आदर्श प्रदान किया जो मेरे रामराज्य का आदर्श है।"<sup>8</sup>

राम कथा भारतीय जनमानस में गहरे तक व्याप्त है। गाँव की चौपालों से लेकर संस्कृत के शास्त्रीय ग्रंथों तथा पुराणों तक राम रमे हैं। राम को सब ने अपने-अपने सुविधा के अनुसार अपनाया है। राम सबके हैं। बौद्ध और जैन विद्वान भी राम के व्यक्तित्व की आदर्शवादिता को देखते हुए उन्हें अपनी परिधि में लेने की कोशिश करते हैं। अब तक लगभग 300 तरह की रामायण अपने विक्षेप के साथ प्रकाश में हैं। रामकथा का मूल स्रोत तो आदिकवि वाल्मीकि कृत रामायण है। उसके बाद रामकाव्य की परम्परा में जयदेव, कालिदास, कम्बन, अनुत्तच्चन, नागचन्द्र, संत एकनाथ, कृत्तिवास, चकबस्त, माधवकन्दली, बाबा तुलसीदास आदि अन्य कवियों तथा संतों ने इसे आगे बढ़ाया। राम धीरज, मर्यादा तथा प्रजारंजन के शिखर पुरुष हैं। किसी भी सभ्य समाज को ऐसे ही व्यक्तित्व पसंद आते हैं जो हर प्रकार से लोक रंजक तथा प्रजारंजक हों। राम में ये सारे गुण विद्यमान हैं और वह

आवश्यकता पड़ने पर योद्धा भी हैं। यही कारण है कि राम, श्रीमन्त शंकरदेव के रचनात्मक परिधि में भी आए। श्रीमन्त ने अपनी रचनाओं 'उत्तरकाण्ड' और 'राम विजय' में राम के विभिन्न रूपों का वर्णन सरसता और सरलता में करके उत्तर-पूर्व भारत के जनमानस पर एक अमिट हस्ताक्षर छोड़ दिया। अगर हम मध्यकालीन सन्त कवियों को ध्यान से पढ़ें तो लगभग सभी, कहीं न कहीं किसी न किसी बिन्दु पर संकीर्ण दिखते हैं।

महा-प्रगतिशील होने का दावा भरने वाले कबीर में भी महिलाओं के लिए चरम-संकुचन विद्यमान है। कबीर के मानवतावाद में आधी आबादी की चिन्ता धुंधली है। अन्य सन्त कवियों में भी अपने आराध्य के प्रति चरम निष्ठा तथा अन्य के आराध्यों और सम्प्रदायों के प्रति विद्वेष, निन्दा और उपेक्षा का भाव है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि मध्यकाल के कमोबेश सभी सन्त कवियों में लोकतंत्र का अभाव है। श्रीमन्त इस मामले में अपना एक विलक्षण स्थान रखते हैं। वो ब्रज यात्रा पर कृष्णकवियों से मिलते हैं, ब्रजभाषा सीखते हैं, कृष्णभक्त बनते हैं, असमिया भाषा से ब्रजभाषा का मेल करके एक नयी और लोकसंपृक्त भाषा 'ब्रजबुलि' का निर्माण करते हैं लेकिन वो राम के आदर्श को देखते हुए, उनमें व्याप्त लोकरंजन और लोकतंत्र को देखते हुए, उनपर लेखनी चलाने से परहेज़ नहीं करते। वह 'राम' पर लिखते हैं और सारगर्भित लिखते हैं। राम में व्याप्त हर उस मूल्य को उजागर करते हैं जिससे समाज को समरस बनाने में सहायता मिले। श्रीमन्त के रचना संसार को देखते हुए कह सकते हैं कि जो कार्य हिन्दी क्षेत्र में कबीर, दादूदयाल, बाबा तुलसी, आचार्य बल्लभ, सूरदास, परमानन्ददास, सुन्दरदास, रामानन्द ने मिलकर किया वह श्री शंकरदेव ने पूर्वोत्तर भारत में अकेले ही किया। यहाँ पर सुन्दरदास और सूरदास का नाम इसलिए भी लिया गया है क्योंकि श्रीमन्त की कविताओं में आवश्यक काव्यशास्त्रीय खुराक भी है और अपेक्षित राग-रागिनियाँ भी हैं। शंकरदेव ने अपने सत्रों और नामघरों में अंकिया और बरगीतों के मंचन के लिए कुछ-कुछ वाद्ययंत्रों का निर्माण भी किया है। श्रीमन्त शंकरदेव इसलिए महत्वपूर्ण हो जाते हैं क्योंकि उनमें लोकतंत्र 500 वर्ष पहले ही अपने नवीन रूप में विद्यमान था।

### सन्दर्भ:

1. ऋग्वेद, प्रथम मण्डल, 89वां सूक्त (शान्ति सूक्त)
2. शंकरदेव, श्रीमन्त, बरगीत
3. विष्णु पुराण, द्वितीय अध्याय, 34वां श्लोक
4. माधवदेव, नामघोषा
5. भागवत अनुवाद, एकादश स्कंध, 1.2.11
6. श्रीमद्भागवतगीता 18.66
7. Phukan, Bimal ; Srimanta Samkardeva: Vaishnav Saint Of Assam (2017), Partridge Publishing India, Page No. 97
8. गाँधी, मोहनदास करमचंद: यंग इंडिया पत्रिका (1921)